सबद
पीयर-रिव्यूड त्रैमासिक शोध पत्रिका
वर्ष- 1, अंक- 4 (अक्टूबर–दिसंबर 2026)
ISSN: 3139-5317 (Online), 3139-5325 (Print)

भारतीय साहित्य का सांस्कृतिक संदर्भ

डॉ. राजेश कुमार वर्मा
सहायक प्राध्यापक, टाटा महाविद्यालय, सीधी, जिला-सीधी, मध्य प्रदेश

सारांश:

साहित्य और संस्कृति दोनों का संबंध मानव जीवन तथा समाज के विकास से है। संस्कृति किसी समाज के रीति-रिवाजों, परंपराओं, मान्यताओं, विचारों, आचार-विचारों और जीवन-पद्धति का समग्र रूप है, जबकि साहित्य इन सभी का सशक्त माध्यम है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ निरंतरता, सहिष्णुता, आध्यात्मिकता, ग्रहणशीलता तथा विविधता में एकता हैं। भारतीय साहित्य का विकास लोकजीवन, लोकभाषाओं और लोकपरंपराओं के आधार पर हुआ है। रामायण, महाभारत, पुराणों तथा विभिन्न धार्मिक एवं लोककथात्मक परंपराओं ने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। विभिन्न भाषाओं और क्षेत्रों की विविधताओं के बावजूद भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक एकता के सूत्र विद्यमान हैं। लोकसाहित्य भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, व्रत, त्योहार, लोकरीतियाँ और सामाजिक परंपराएँ जनमानस की भावनाओं तथा अनुभवों को अभिव्यक्त करती हैं। लोकसाहित्य समाज का दर्पण होने के साथ-साथ उसकी सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने का महत्त्वपूर्ण साधन भी है। समाज में होने वाले परिवर्तनों के साथ संस्कृति और साहित्य में भी परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार लोकसाहित्य, भाषा, समाज और संस्कृति के बीच अन्योन्याश्रित संबंध स्थापित होता है। भारतीय संस्कृति ने विभिन्न धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभावों को आत्मसात करके अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी है। साहित्य इन प्रभावों को अभिव्यक्त करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करता है। अंततः कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य और संस्कृति एक-दूसरे के पूरक हैं। साहित्य संस्कृति का दर्पण है तथा संस्कृति साहित्य की आधारभूमि है। दोनों मिलकर भारतीय समाज की एकता, विविधता और सांस्कृतिक विरासत को सुदृढ़ बनाते हैं।

मुख्य शब्द: संस्कृति, लोक साहित्य, लोकजन, लोक भाषा, समाज।

प्रस्तावना

साहित्य और संस्कृति का बहुत घनिष्ठ संबंध रहा है, क्योंकि दोनों का संबंध मानव और उसके विकसित समाज से है। संस्कृति किसी समाज में अंदर तक व्याप्त गुणों के सम्मिलित स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, समझने, विचार करने तथा काम करने के रूप में समाहित होती है। व्यापक रूप से संस्कृति शब्द का आशय उत्तम या सुधरा हुआ वातावरण या स्थिति से होता है। मनुष्य स्वभाव से विकासशील और प्रगतिशील प्राणी है। वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करके चारों ओर प्राकृतिक परिस्थितियों को लगातार सुधार और उन्नति की ओर ले जाता है। ऐसी प्रत्येक जीवन-प्रणाली, रीति-रिवाज, रहन-सहन, विचार-भाव, आचरण, नए अनुसंधान और आविष्कार, जिससे मानव पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊपर उठ चुका है और सभ्य बनता है।

सभ्यता संस्कृति का ही एक अंग होती है। सभ्यता मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित करती है, जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति की सूचना प्राप्त होती है। मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार कर संतोष प्राप्त नहीं कर पाता। वह भोजन या शरीर या अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित नहीं है। भौतिक उन्नति केवल शारीरिक भूख मिटा सकती है, किंतु मन और आत्मा को तृप्त करने के लिए मनुष्य ने अपना एक पृथक विकास किया

है, जिसे हम उसकी सभ्यता या संस्कृति कह सकते हैं। मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है। मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन से संबंधित है। सुंदरता और सौंदर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्तिकला, चित्रकला और वास्तुकला आदि कलाओं को उन्नत करता चला आया है। सुखपूर्वक अपना जीवन-यापन, सामाजिक और राजनीतिक संगठनों का निर्माण करना उसकी मनुष्यता का प्रमाण है। इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति और प्रगति के सूचक उसकी प्रत्येक खोज उसकी संस्कृति का प्रमुख अंग हैं, जिनमें साहित्य एक प्रधान अंग के रूप में उभरकर सामने आया है, जो मनुष्य के मन और आत्मा से संबंधित होता है।

भारतीय संस्कृति का इतिहास काफी प्राचीन और रोचक रहा है और अपनी अनेक विशेषताओं के कारण दुनिया की अन्य संस्कृतियों में शुमार है। भारतीय संस्कृति के अंतर्गत निरंतरता, लचीलापन एवं सहिष्णुता, ग्रहणशीलता, आध्यात्मिकता और भौतिकता का समन्वय, अनेकता में एकता उसकी विशेषताएँ रही हैं। इसी संस्कृति के अंतर्गत साहित्य भी उसका एक अंग और प्रयास है, जिसका संबंध मनुष्य की आत्मा और मन से होता है, जो उसके मन और आत्मा की प्यास को तृप्त करता है और आनंद और मोक्ष की ओर ले जाता है। भारतीय संस्कृति और साहित्य का काफी घनिष्ठ संबंध रहा है। भारतीय साहित्य का संबंध लोकजन से रहा है अर्थात् लोक संस्कृति और सभ्यता भारतीय साहित्य का मूल है, क्योंकि भारत का प्राण जन और वहाँ के लोगों में बसता है। अर्थात् भारतीय जनमानस से ही भारतीय साहित्य का जन्म हुआ। आदिकाल से ही रामायण, महाभारत काल तथा अन्य वैदिक कालों में भारतीय जनमानस का स्वरूप उसके साहित्य के माध्यम से प्रदर्शित हुआ है। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता।

यद्यपि भारत के जनमानस और उसकी भाषा में अनेक विभिन्नताएँ और अलग-अलग विशेषताएँ नजर आती हैं, फिर भी उसका साहित्यिक आधार-पृष्ठ एक ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत और अनेक लोककथाएँ, इनके रचनाकारों में कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतियाँ, पालि, प्राकृत और अन्य भारतीय भाषाओं में लिखित बौद्ध, जैन और अन्य धर्मों का साहित्य भारत की समस्त भाषाओं को उत्तराधिकार में मिला है। वास्तव में आधुनिक भारतीय भाषाओं के ये अक्षय प्रेरणा-स्रोत हैं, जो प्रायः सभी को समान रूप से प्रभावित करते हैं। इनका प्रभाव निश्चित ही अत्यंत समन्वयकारी रहा है और इनसे प्रेरित साहित्य में एक प्रकार की मूल समानता स्वयं ही नजर आती है। इस प्रकार समान राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक आधार-पृष्ठ पर पल्लवित-पुष्पित भारतीय साहित्य जन्मजात समानता एवं समन्वय की घटना है। भारतीय साहित्य के अंतर्गत राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का समावेश भी अधिक रहा है। पिछले 1000 वर्षों में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन हुए, जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। प्राकृतिक परिस्थितियों ने हमेशा मानव की संस्कृति और सभ्यता को प्रभावित किया है और साहित्य का प्रमुख आधार संस्कृति और सभ्यता ही होते हैं, क्योंकि जिस प्रकार का प्राकृतिक वातावरण होता है, उसी प्रकार का लोकजन होता है और लोकजन जिस प्रकार का होता है, उसी प्रकार लोक संस्कृति और लोक साहित्य का निर्माण भी उसी प्रकार पल्लवित होता है।

भारतीय साहित्य और सामाजिक संस्कृति

भारतीय साहित्य की अंतर्निहित भारतीयता भारत की संस्कृति का प्रतीक है। भारत की संस्कृति अनेकता और विविधता में विद्यमान है। इस एकता को महात्मा गांधी, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद और अन्य बड़े दार्शनिकों तथा विद्वानों ने बड़ी ही क्षमता के साथ पहचाना था। विशेष दृष्टिकोण से हमें भारत के अलग-अलग राज्यों और समुदायों की संस्कृति में कुछ विभिन्न गुण-विशेष दिखाई देते हैं। यदि गहनता से देखा जाए, तो संस्कृति के मूल आधार में भारत के सभी समाजों और समुदायों की समानता दिखाई देती है। यदि रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, त्योहार, शिष्टाचार और

खान-पान को संस्कृति का सामान्य आधार माना जाए, तो भारतीय साहित्य की तरह ही भारतीय संस्कृति की अवधारणा भी स्पष्ट हो सकती है। प्राचीन मुगल शासकों तथा यूरोप से आए शासकों के आगमन से भारतीय संस्कृति को कुछ नए आधार भी प्राप्त हुए। ऐसी स्थिति में भारतीय संस्कृति का स्वरूप केवल हिंदूवादी या हिंदी संस्कृति न होकर एक मिली-जुली संस्कृति के रूप में उभरकर सामने आया। इस बाहरी संस्कृति के प्रभाव से भारत की मूल संस्कृति में घुलने-मिलने वाली संस्कृतियों का अनूठा मिश्रण तैयार हुआ, जिसका प्रभाव सभी भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य पर पड़ा है।

भारतीय संस्कृति और साहित्यिक एकता

समस्त भारतीय भाषाओं में सृजित साहित्य में हमारी एक अविभाज्य सांस्कृतिक परंपरा का स्रोत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वैदिक काल के वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य में एकता के सूत्र का आदर्श परिलक्षित होता है। भारत के सभी राज्यों और प्रदेशों की भाषाओं में आठवीं से लेकर दसवीं सदी तक अपना उल्लेखनीय साहित्य उपलब्ध नहीं होता था, केवल तमिल साहित्य इसके अपवाद के रूप में दिखाई देता है। भारतीय साहित्य का आधार भारतीय समाज, उसकी परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों में निहित है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत तथा अनेक लोककथाएँ भारतीय जनमानस की भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करती हैं। कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव जैसे रचनाकारों की अमर कृतियों ने भारतीय साहित्य को समृद्ध बनाया है। पालि, प्राकृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में रचित बौद्ध, जैन और दूसरे धर्मों का साहित्य भी भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। इन सभी साहित्यिक परंपराओं ने आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रेरणा प्रदान की है। इस प्रकार भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक एकता और समन्वय की भावना स्पष्ट दिखाई देती है।

साहित्य में सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक-साहित्य गतिशील सांस्कृतिक प्रवाह का हिस्सा है। उन्होंने बताया कि सामाजिक विकास से सांस्कृतिक विकास जुड़ा हुआ है तथा सांस्कृतिक विकास से लोक-साहित्य का विकास होता है। इस प्रकार संस्कृति, समाज एवं साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध है। आचार्य द्विवेदी संस्कृति को शाश्वत और विशुद्ध नहीं मानते। उनके विचार से सामाजिक बदलाव के साथ-साथ संस्कृति भी परिवर्तित होती रहती है। अनेक विद्वानों ने परंपरा एवं संस्कृति को एक ही माना है, तो कई ने इन्हें पृथक माना है। अनेक विचारक यह सिद्ध करने में लगे रहते हैं कि संस्कृति तथा सभ्यता में भी अंतर है। वास्तव में दर्शन, धर्म, परंपरा, संप्रदाय, सभ्यता और भाषा आदि में से किसी को भी संस्कृति का प्रतिरूप माना जा सकता है। संस्कृति के कई भेदों में जन-संस्कृति, अभिजन संस्कृति, आधुनिक एवं उत्तर-आधुनिक संस्कृति, उपभोक्तावादी संस्कृति, मंडन, खंडन, रचना, विखंडन, विरचना और अरचना इत्यादि पर सर्वाधिक चर्चाएँ होती रहती हैं।

फलतः संस्कृति का सामाजिक प्रारूप अथवा ढाँचा वह मूलभूत घटक होता है, जिसमें न केवल समाज का वैचारिक पक्ष आधारित होता है, बल्कि काफी हद तक उसकी भौतिक प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं। संस्कृति के अंतर्गत अधिकांशतः ज्ञान-विज्ञान के संपूर्ण भाग निहित होते हैं। उनमें अनेक परंपराओं का संगम, विभिन्न विचारधाराओं का सान्निध्य और जीवन के विविध आचार-विचारों का समावेश होता है। संस्कृति का एक सिरा प्राकृतिक तत्त्वों से जुड़ा है, तो दूसरा मानवीय उपलब्धियों से। आर्थिक और आध्यात्मिक विकास में संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार किसी भी वर्ग, समाज, समूह, प्रजाति, जाति या राष्ट्र की पहचान उसके सांस्कृतिक प्रतीकों से संभव हो पाती है, उसी प्रकार व्यक्ति के संस्कार भी संस्कृति के ही भाग हैं। इस तरह संस्कृति का संबंध व्यष्टि से समष्टि तक सर्वत्र

परिलक्षित होता है। लोक-साहित्य का संस्कृति से अत्यधिक घनिष्ठ संबंध है। संस्कृति समाज का अत्यंत अनिवार्य घटक होने के कारण लोक-साहित्य से भी असंपृक्त नहीं है। लोक-साहित्य को समाज का आईना कहा जाता है, क्योंकि उसमें समाज के धार्मिक, नैतिक और सामाजिक क्रियाकलापों की अभिव्यक्ति होती है। ये सभी क्रियाकलाप संस्कृति के भीतर ही सम्मिलित होते हैं। संस्कृतियाँ निरंतर परिवर्तित होती रहती हैं और समय के साथ उनमें नए विचार तथा व्यवहार जुड़ते जाते हैं।

समाज निरंतर परिवर्तित होता है और साहित्य भी निरंतर बदलता रहता है। यहाँ समाज एवं लोक-साहित्य में कोई मूलभूत अंतर नहीं है। धर्म और अध्यात्म में सत्संग की भूमिका होती है। काफी कुछ वैसा ही लोक-साहित्य में भी देखने को मिलता है। प्रकारांतर से धर्म एवं अध्यात्म को भी लोक-साहित्य के अंतर्गत निहित माना जा सकता है। परोपकार से व्यापक कोई धर्म नहीं है तथा मानवीय बंधनों से मुक्ति की भावना से व्यापक कोई अध्यात्म नहीं है। लोक-साहित्य में भी बंधनों से मुक्ति तथा परोपकार के माध्यम से स्वतंत्रता की बात की जाती है। इसके बावजूद हम सरलता से समझ लेते हैं कि अध्यात्म तथा धर्म में अंतर है। उसी प्रकार लोक-साहित्य में भी जीवन के अनेक पक्षों का समावेश होता है। संस्कृति में परंपराओं का अर्थ निहित होता है। इसका एक सिरा सभ्यता की ओर जाता है तथा दूसरा संस्कारों की ओर। मनोविश्लेषणवाद के अनुसार व्यक्ति के संस्कार उसकी प्रवृत्तियों में निहित होते हैं। अनेक स्मृतियाँ उसके चित्त-पटल पर अंकित रहती हैं। सभ्यता के अत्यधिक प्रभाव के कारण वे दब जरूर जाती हैं, परंतु नष्ट नहीं होतीं। उसी प्रकार लोक-साहित्य को भी चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब कहा जाता है।

चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब होने के कारण लोक-साहित्य की संस्कृति से मैत्री अवश्य होती है, परंतु वह संस्कृति से पूरी तरह एकाकार नहीं हो जाता। संस्कृति का मूल निवास-स्थान लोकचित्त अथवा लोकमानस होता है, लेकिन लोक-साहित्य का मूल निवास-स्थान भाषा में व्यक्त होता है। संस्कृति की जीवनरेखा लोकमानस है, तो लोक-साहित्य की जीवनरेखा भाषा है। संस्कृति का प्रस्तुतीकरण मानवीय आचार-विचारों, क्रिया-कलापों एवं व्यवहारों में होता है, जबकि लोक-साहित्य भाषा के माध्यम से चित्तवृत्तियों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

जिस प्रकार संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ते हैं, उसी प्रकार उन संस्कारों की आधारभूमि चित्तवृत्तियों के ढाँचे में भी अनेक घटक सम्मिलित होते हैं। चित्तवृत्तियों की भूमि पर देखने से प्रतीत होता है कि लोक-साहित्य एवं संस्कृति में गहरा संबंध है। लोक-साहित्य में संस्कृतियाँ अंतर्निहित होती हैं, परंतु संस्कृति में लोक-साहित्य पूरी तरह अंतर्निहित नहीं होता। लोक-साहित्य और भाषा का जितना अविभाज्य संबंध है, उतना ही लोक-साहित्य के इतिहास और भाषा के इतिहास का भी है। भाषा के इतिहास को समाज के साथ जोड़कर देखा जाए, तो भाषा के इतिहास के साथ-साथ समाज और संस्कृति का इतिहास भी सामने आएगा। लेकिन यह तभी संभव होगा, जब भाषा के उदय और विकास को सामाजिक विकास के अंतर्गत रखकर समझा जाए, न कि वैज्ञानिकता के नाम पर भाषा के सामाजिक-ऐतिहासिक स्वरूप को छोड़कर केवल उसके समकालीन रूप पर विचार किया जाए। लोक-साहित्य की भाषा में भाषा की सामाजिकता के साथ-साथ साहित्यकार की निजी सृजनशीलता भी प्रस्तुत होती है।

भारतीय लोक-संस्कृति और लोक-जीवन

भारत की संस्कृति यहाँ के लोक-जीवन में निवास करती है। हमारे सामाजिक जीवन के धार्मिक विश्वासों, लोक-रीतियों, रूढ़ आस्थाओं, सर्वजन हिताय एवं परोपकारी वृत्तियों की भावनाओं के साथ विभिन्न व्रतों और त्योहारों के अवसरों पर घर को नाना प्रकार के रीति-रिवाजों और अल्पनाओं से सजाने इत्यादि के बीच हमें भारतीय लोक-संस्कृतियों का दर्शन होता है। वास्तविकता यही है कि भारत की संस्कृति के प्राण यहाँ के लोक-जीवन में ही निवास करते हैं। न

जाने कितने विदेशी आक्रमण भारत की धरती पर हुए तथा इन आक्रांताओं ने भारतीय संस्कृति को नष्ट करने के लिए अनेक प्रयास किए। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति आधुनिक समय में भी यथावत जीवंतता के साथ गतिमान है। असंख्य आघातों को सहकर भी वह पूरी तरह विकृत नहीं हुई। इसकी वजह यही है कि हमारी संस्कृति की जड़ें लोक-जीवन में निहित हैं तथा साहित्य उस संस्कृति की सुरक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

लोक-साहित्य किसी समाज की भावनाओं, विश्वासों, परंपराओं और जीवन-पद्धति का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ, कहावतें और मुहावरे लोकमानस की अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम हैं। इनके द्वारा समाज के सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम, त्याग, परोपकार और सामूहिक जीवन की भावनाएँ व्यक्त होती हैं। लोक-साहित्य में सामान्य जन के अनुभवों का समावेश होता है, इसलिए इसे समाज की सांस्कृतिक धरोहर माना जाता है। भारतीय लोक-संस्कृति की विशेषता यह है कि इसमें विविधता के साथ एकता भी दिखाई देती है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भाषाएँ, वेशभूषाएँ, खान-पान, रीति-रिवाज और त्योहार अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन इनके मूल में मानवीय संवेदनाएँ और सामाजिक सद्भाव की भावना विद्यमान रहती है। लोक-साहित्य इन भावनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि भारतीय साहित्य और संस्कृति का संबंध प्राचीन काल से रहा है। वे दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि जिस देश की संस्कृति जितनी विकसित और मजबूत होती है, उसका साहित्य भी उतना ही विकसित और समृद्ध होता है। दूसरे रूप में हम कह सकते हैं कि साहित्य संस्कृति का दर्पण है और संस्कृति साहित्य का आधार है। संस्कृति का संबंध लोकजन और लोकाचार से होता है तथा साहित्य उस लोकजन की आत्मा की अभिव्यक्ति होता है। साहित्य के माध्यम से मनुष्य अपनी भावनाओं, विचारों और आत्मा की आवाज को प्रकट करता है। वह स्तुति, विनोद तथा अन्य साहित्यिक अभिव्यक्तियों के माध्यम से अपने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को व्यक्त करता है। साहित्य प्रकृति के साथ-साथ मानवीय संबंधों से जुड़े वातावरण का भी चित्रण करता है और उसका विकास करता है। भारतीय परिदृश्य में हमारी सांस्कृतिक विरासत अत्यंत समृद्ध और मजबूत रही है। यही कारण है कि अनेक विदेशी आगमन और आक्रमणों के बावजूद भारतीय संस्कृति की पहचान भारतीयता के रूप में बनी रही। भारतीय साहित्य ने इस सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखने, उसका प्रसार करने और नई पीढ़ियों तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस प्रकार भारतीय साहित्य, लोक-साहित्य, भाषा, समाज और संस्कृति एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। भारतीय साहित्य की वास्तविक शक्ति उसकी सांस्कृतिक विविधता, सामाजिक अनुभवों और लोकजीवन से प्राप्त होती है। यही उसकी प्रमुख विशेषता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तिवारी, डॉ. रामचंद्र (2018), *हिंदी का गद्य साहित्य*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।
2. तिवारी, आचार्य रामचंद्र (2018), *हिंदी साहित्य का इतिहास*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी।
3. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, *हिंदी साहित्य की भूमिका*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद, *आलोक पर्व*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

6. वर्मा, रामकुमार, *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास*, रामनारायण लाल प्रकाशन, प्रयागराज।

7. शर्मा, रामविलास, *परंपरा का मूल्यांकन*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

8. वर्मा, धीरेन्द्र (संपादक), *हिंदी साहित्य कोश*, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी।

9. सिंह, डॉ. लाल साहब, *हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

10. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

11. नगेंद्र, डॉ., *हिंदी साहित्य का इतिहास*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

12. मिश्र, भागीरथ, *हिंदी साहित्य का परिचयात्मक इतिहास*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।